तिसरा अध्याय

''तबला वादन कला में रियाज़ः एक महत्व''

प्रस्तावनाः

तबला यह वाद्य, 'वाद्य वर्गीकरण' के अंतर्गत 'अवनध्द वाद्य' के श्रेणी में आता है। तबला यह 'लय–ताल–वाद्य' है, जो कष्टसाध्य वाद्य है, जिसें केवल रियाज़ से ही साध्य किया जा सकता है। तबला वादन में कौशल्यपूर्णता के लिए तबले का रियाज़ महत्वपूर्ण है। बगैर रियाज़ के कुशल तबलावादक बनना, केवल असंभव ही होगा। तबले के निरंतर अभ्यास एवं रियाज़ से वादक की हाथ तैय्यारी भी अच्छी हो पाती है लेकिन केवल योग्य रियाज़ याने मेहनत से ही वादक का तबलावादन कौशल्यपूर्ण बन सकता है, ऐसा अनुभव है। इसकी वज़ह यह है कि, तबले का रियाज़ करना याने केवल, तबला लगातार बजाना और बजाते ही रहना नहीं होगा बल्कि, शारीरिक रियाज़ के साथ–साथ बुध्दि का विचार होना भी जरूरी है। इस प्रकार, किया गया रियाज़ केवल रियाज़ न होते हुए वह साधक का सर्वांगीण वादन विचार बन जाता है और जब ऐसे सर्वांगीण विचार के साथ तबलावादक रियाज़ करता है तब उसके वादन की निःसंदेह प्रगति होती रहती है, यह निश्चित है। इस प्रकार, रियाज़ में शारीरिक तंत्र के साथ–साथ बुध्दि–कौशल्य होना भी जरूरी है। वर्तमान में, तबला ने सर्वश्रेष्ठ तालवाद्य के रूप में गौरव प्राप्त किया है, इसलिए इस सर्वश्रेष्ठ तालवाद्य का रियाज़ भी उतना ही श्रेष्ठतम होगा और होना भी चाहिए। तबलावादन में रियाज़ का अनन्य साधारण महत्व है।

तबला यह एक तालप्रधान अवनध्द वाद्य है। मूलरूप में साथसंगति के लिए इस वाद्य की प्रमुख उपयोगिता थी। 'साथसंगत का तालवाद्य', यहीं तबले की आरंभिक पहचान थी। लेकिन, वर्तमान में तबले में हुए नवनवीन शोध व प्रयोग, उसी प्रकार तबले की बनावट तथा बाज के आधार पर तबले का कलात्मक दृष्टि से हुआ विकास ही उसकी उन्नति का प्रमुख कारण बनी। इस प्रकार, तबले का सर्वांगीण निकास हुआ और इसी के फलस्वरूप तबले ने स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत होने वाला प्रमुख तालवाद्य ऐसा सन्मान पाया और यहीं तबलावादन कला की विशेषता बनी।

संगीत में तबलावादन यह एक प्रयोगशील कला है। तबला यह केवल 'तालवाद्य' न रहते हुए वह 'नाद–स्वर लय–ताल वाद्य के रूप में' कलाविष्कार करता हुआ एक प्रमुख अवनध्दवाद्य बन चुका है। इसी के आधार से शोधार्थी का यह विचार है की, ऐसे सर्वश्रेष्ठ वाद्य का रियाज़ याने तबलावादन कला की साधना भी उतनी ही श्रेष्ठतम होनी चाहिए। तबले के रियाज़ में ही तबलावादन कला का सौंदर्य निहित होता है, ऐसा शोधार्थी का मानना है।

3.1. तबलावादन का अर्थः

संगीत में 'तबलावादन' यह एक प्रायोगिक कला हैं। संगीत कला की वादन विधा के अंतर्गत 'तबलावादन' को सामान्य रूप से जाना जाता है, जिसे तबले की वादन प्रस्तुति कहते है। वादन प्रस्तुति याने प्रत्यक्ष क्रिया, प्रत्यक्ष वादन। तबलावादक तथा उसकी वादन प्रस्तुति इसका बड़ा ही गहरा संबंध होता है, जो परस्पर पूरक होता है। तबलावादक की प्रतिभा उसके वादन से अभिव्यक्त होती हैं। तबलावादक का सौंदर्यपूर्ण कलाविष्कार उसके वादन प्रस्तुति में निहित होता हैं। वर्तमान में, संगीत कला के हर एक क्षेत्र में तबलावाद्य की वादन प्रस्तुति होती हुई दिखायी देती हैं। इतना ही नहीं, बल्कि केवल साथ संगति का वाद्य न रहते हुए वर्तमान में 'स्वतंत्र तबलावादन' प्रस्तुति, यह तबले की सबसे बड़ी उपलब्धि है, ऐसा कहना योग्य होगा। इस प्रकार, संगीत कला में तबलावादन अपनी चरमसीमा पर हैं। तबलावादन प्रस्तुति का अपने आप में एक विशेष महत्व है।

तबलावादन के कला और शास्त्र यें दो पक्ष प्रमुख आधार हैं, जिसके आधार पर तबलावादन का कलात्मक तथा शास्त्रीय दृष्टिकोन से उत्कर्ष हुआ है। इसी के फलस्वरूप वर्तमान में हमें शास्त्रोंक्त तबलावादन का सर्वसमावेशक तथा सर्वगुण संपन्न स्वरूप दिखायी दे रहा हैं। सचमुच, संगीत कला में तबलावादन का स्थान अनन्य साधारण है।

पं. सुधीर माईणकरजी के कथन अनुसार, ''संगीत कला (गायन, नृत्य और वाद्य–वादन) के विकास और उसकी प्रगति की यात्रा के साथ ताल–वाद्य और ताल–वादन के विकास और उसके स्थित्यंतरों की भी यात्रा संपन्न होती आई है।''[1]

ताल–वादन और ताल वाद्य का विकास ही तबलावादन का महत्वपूर्ण अंग है, ऐसा शोधार्थी का विचार है।

3.1.1 तबलावादनः सभी घरानों की दृष्टिकोन सेः

तबलावादन के आधारपर तबले के विभिन्न घरानों का विचार किया जाए, तो वादन प्रस्तुति में विभिन्नता दिखायी देती है। तबले के दिल्ली, अजराड़ा, लखनौ, फर्रूखाबाद, बनारस तथा पंजाब, ये छह घराने है। तबले की वादनशैली याने 'बाज' के आधार पर ही तबले के विभिन्न घराने निर्माण हुए। प्रत्येक घरानें ने अपनी–अपनी वादनशैली का विचार रखा है। वादनशैली में विविधता ही घरानों की नींव बनी।

पं. सुधीर माईणकरजी के कथननुसार,

''तबला–वादन एक प्रयोगशील कला होने से विविध वादन–प्रकारों के लिए विभिन्न प्रकार के निकास का तंत्र विकसित हुआ और उसी के फलस्वरूप विविध बाज पैदा हुए। इन बाजों (विविध शैलियों) को शिष्य–परंपरा प्राप्त होनेसे अलग–अलग घराने पैदा हुए।''[2]

इस प्रकार से देखा जाए तो, तबले का बाज एवं वादनशैली याने निकास का परस्पर संबंध है, जो महत्वपूर्ण है। तबलावादन में दो बाज हैं –

1) खुला बाज और, 2) बंद बाज।

खुले बाज में तबलावादन अधिकतर तबले की लव में होता है तथा बंद बाज में तबले की चाँटीपर वादन होता है। दिल्ली, अजराड़ाने बंद बाज का स्वीकार किया, जिसे चाँटी का बाज भी कहा जाता है। उधर, लखनौ, बनारस, फर्रूखाबादने खुले बाज का स्वीकार किया। ये घराने कथ्यक नृत्यसे प्रभावित थे। पखावज से प्रभावित पंजाब घराने ने अपनी एक स्वतंत्र वादनशैली का निर्माण करते हुए खुले बाज का स्वीकार किया। इस प्रकार, तबले के यह छह घराने तबलावादन के छह दृष्टिकोन बने, जिसका मूल आधार था; वादन–विचार शैली।

इस तरह, विचार किया जाए तो सभी घरानों की दृष्टिकोन से तबलावादन में बाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सभी घरानों की दृष्टिकोन से तबलावादन उन्नत, साहित्यसंपन्न तथा समृध्द हुआ है, यह निःसंशय है।

3.2. स्वतंत्र तबलावादन एवं साथसंगतः

स्वतंत्र तबलावादन और साथसंगत, ये तबलावादन के दो महत्वपूर्ण पहलु है। अपनी वादन प्रकृति के अनुसार स्वतंत्र वादन एवं साथसंगत, यह दोनों भी परस्पर भिन्न एवं अलग विचार–वादन कृति है। अपितु, तबलावादन में दोनों का अन्यतम् स्थान है। इसका औचित्य उनके वादन प्रस्तुति में ही दिखायी देता है। इस प्रकार, देखा जाए तो, दोनों का महत्व वादनक्रिया से जुड़ा हुआ है।

स्वंतत्र तबलावादन में वादन प्रस्तुति स्वतंत्र रूप से (एकलवादन) के रूप होती है तथा साथसंगती का तबलावादन मुख्य कलाकार की सहाय्यक रूप में (साथीदार) अपनी भूमिका निभाता है। दोनों कला प्रस्तुति की सौंदर्यता उसमें निहित वादन प्रस्तुति में ही होती है। स्वतंत्र तबलावादन तथा साथसंगत में प्रभावात्मकता एवं सौंदर्यपूर्णता, यह संगीतक्षेत्र में तबलावाद्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है ऐसा कहना उचित होगा। स्वतंत्र वादन हो या, साथसंगत दोनों मे वादनप्रस्तुति याने वादनक्रिया का स्थान महत्वपूर्ण है। प्रत्यक्ष वादन क्रिया ही यहाँ पर सही रूप मे मायने रखती है। वर्तमान में, मूर्धन्य कलाकारोंद्वारा होता हुआ, स्वतंत्र तबलावादन तथा साथसंगत का आविष्कार ही तबलावादन की सच्ची सफलता है, यह निश्चित है।

शोधार्थी के मतानुसार, आदर्श तबला संगतकार होने हेतु तबलासाधक के लिए, गुरूजन–विद्वान कलाकारोंने कि हुई साथसंगत का नित्य श्रवण, गुरू के मार्गदर्शन में साथसंगती के लिए किया हुआ आवश्यक अभ्यासपूर्ण व सातत्यपूर्ण रियाज़, तबला साधक का सर्वांगीण वादनविचार और इसी आधार पर तबला साधकों ने मुख्य कलाकार के विचारों से कि हुई संगत तथा मुख्य विषयानुरूप कि हुई तबले की पोषक साथसंगत और इस दृष्टिकोन से साधक ने किया हुआ चिंतन यह बाते महत्वपूर्ण होती है।

स्वंतत्र तबलावादन और साथसंगत, यें तबलावादन के दो महत्वपूर्ण वादनविचार है, जो संगीत जगत को मिले है।

3.3. तबला वादन एक कलाः

'तबला वादन' यह संगीत की वादन विधा कला है। गायन, वादन और नृत्य के संयुक्त कलाविष्कार को संगीत' कहा जाता है। ललित कलाओं में 'संगीत' को सर्वश्रेष्ठ कला के रूप में जाना जाता है। संगीत यह एक प्रायोगिक कला है, जो अपने प्रस्तुति से ही सिध्द होती है। संगीत कला का यह अपना श्रेष्ठत्व तथा अस्तित्व है। संगीत में वादन विधा के अंतर्गत तबला वादन कला का अपना एक महत्व है। तबला यह लय–ताल वाद्य के रूप में जाना जाता है और 'लय' को संगीत का प्राणतत्व माना जाता है। इस प्रकार, हमे तबला वादन कला का महत्व दिखायी देता है।

पं. सुधीर माईणकरजी के कथन अनुसार,

'''कला' व्यक्तिनिष्ठ मानी जाती है, (Art is Subjective) और 'शास्त्र' वस्तुनिष्ठ माना जाता है, (Scinece is Objective) संगीत एक प्रयोगशील कला, (Performing Art) मानी जाती है। इसलिए तबलावादन (जो संगीत कला का एक अंग है) का प्रस्तुतिकरण भी व्यक्तिनिष्ठ होना आवश्यक है, अनिवार्य है।''[3]

प्रमुख तालवाद्य के रूप में मान्यता प्राप्त हुए, तबला वाद्य ने अपनी कला प्रस्तुति का स्तर हमेशा ही उँचा रखा है, इसमें कोई संदेह नहीं। वर्तमान में, प्रभावात्मक तबलावादन प्रस्तुति इसकी विशेष पहचान बन गयी है। तबला वाद्य ने 'साथ संगत' के साथ–साथ 'स्वतंत्र याने एकल तबला वादन' में भी हिमालय की ऊँचाई पायी है, ऐसा कहना उचित होगा। शोधार्थी के विचार से, तबला वादन कला का इस से बढ़कर और क्या उदाहरण हो सकता है। यही, तबला वादन कला की विशेषता कहनी होगी। तबला वादन ने अपनी कला प्रस्तुति से अपना एक स्वतंत्र तथा विशेष स्थान प्राप्त किया है। तबले के बनावट तथा बाज में हुआ उत्तरोत्तर बदलाव तथा परिवर्तन से तबले का क्रमवार विकास होता चला आया, तबले की प्रगति हुई और इसी के फलस्वरूप वर्तमान में तबलावादन कला का जो हम जो आधुनिक रूप देख रहे है, वह सचमुच तबले में हुई एक क्रांति ही है, जो तबलावादन कला प्रस्तुति की नवीनता और आधुनिकता की द्योतक है। वादन शैली के आधार पर तबले में बजने वाले विविध रचना प्रकार (forms) तबलावादन कला

की साहित्य संपन्नता है। इसी से, तबले की भाषा एवं साहित्य समृध्द बन गया है। तबले का यह कलात्मक विकास है।

पं. सुधीर माईणकरजी के कथन अनुसार,

''तबलावादन में कल्पनापूर्ण अथवा विस्तारक्षम रचनाओ की आलंकारिक काव्यमय भाषा और उन रचनाओं का नादमधुर वादन, 'कला' है। तबले के शब्द साहित्य के सौंदर्य–तत्वों का अध्ययन तबला–वादन का सौंदर्य–शास्त्र है। गुँजयुक्त, स्वरमय, प्रभावकारी ठेका बजाना कला है। उसी प्रकार, विविध तालों में बाँधी हुई रचनाओं का कलात्मक एवं प्रभावकारक प्रस्तुतिकरण तबला–वादन–कला का सबसे महत्वपूर्ण अंग है।''[4]

उपर्युक्त कथनानुसार देखा जाए तो, वादक ने शास्त्रपक्ष का भली–भाँति अध्ययन करके अपनी कला प्रस्तुति में उसका प्रयोग करना जरूरी है, ऐसा शोधार्थी का एक विचार हैं। यही प्रभावात्मक कलाप्रस्तुति होगी, यह निःसंशय है। तबला वादन कला यह एक साहित्य संपन्न कला है, ऐसा शोधार्थी का विचार हैं।

जो सौंदर्यपूर्ण होती है, वही कला है। कला याने सौंदर्य। कला का सौंदर्यपूर्ण तथा कलात्मक आविष्कार प्रभावशाली तथा परिणामकारक होता हैं। कला यह प्रत्येक कलाकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति होती हैं। संगीत कला सूक्ष्म होती है। संगीत कला का मुलभूत तत्व उसकी सूक्ष्म मूल्यों में निहीत होता है। यह सूक्ष्म मूल्य ही कला को सौंदर्यपूर्ण बनाते हैं। तबलावादन में निर्मित विविध संगीतोपयोगी नादध्वनियाँ, उस कला का महत्वपूर्ण सौंदर्यतत्व है। इन नादध्वनियों का सूक्ष्म अनुभव केवल कला की साधना से ही हो पायेगा, जिसें रियाज़ कहा है। तबला वादन कला यह सर्वांग से परिपूर्ण तथा सौंदर्यपूर्ण होती है। इसलिए, तालवाद्यों मे तबलावादन कला श्रेष्ठ है, ऐसा शोधार्थी का विचार है।

श्रुतिर्माता लयः पिता।

तबला वादन में, कलात्मकता एवं लय में शुध्दता ही तबलावादन कला की प्रमुख पहचान है, इसलिए तबले को लय–ताल–वाद्य कहा जाता है। इसी के आधार पर भारतीय संगीत परंपरा का सर्वोत्तम तालवाद्य है 'तबला', ऐसा कहना उचित होगा। अपने सर्वाधिक उपयोगी, उन्नत, कलात्मक एवं समृध्द संपन्न इस तालवाद्यने

वादनकला को सर्वरूपेण संपन्न किया है। इसी समृध्दता तथा संपन्नता के आधार पर शोधार्थी कहना है कि, तबला यह लय–ताल प्रधान प्रमुख अवनध्द वाद्य है।

3.4. तबला वादन एवं रियाज़ का संबंधः

तबला वादन में रियाज़ का अन्यतम स्थान हैं। बगैर रियाज़ के तबलावादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मेहनत की भूमिका रखनेवाला और वैसी मानसिक वृत्ति रखनेवाला साधक ही तबला अच्छी तरह से सीख पाता है और बजा पाता है।

शोधार्थी के गुरुवर्य पं. अरविंद मुलगांवकरजी कहते है,

''भारतीय संगीतामधील वाद्यात जी काही कठीण आणि परिश्रम साध्य वाद्ये आहेत. त्यामध्ये तबल्याची गणना करावी लागेल. तंतुवाद्यामध्ये ज्याप्रमाणे सरोद, सारंगी ही वाद्ये वाजविण्यास कठीण आहेत. त्याप्रमाणेच तालवाद्यांमध्ये तबला हे वाद्य. कोणीही उठावे आणि तबला शिकण्यास प्रारंभ करून दोन–तीन वर्षांमध्ये त्यावर प्रभुत्व मिळवावे ही गोष्ट अशक्य आहे. लयीचे थोडे तरी अंग असल्याशिवाय किंवा थोडे तरी उपजत लयज्ञान असल्याशिवाय कोणीही या वाद्याच्या मागे जाऊ नये.''[5]

उपर्युक्त कथन के अनुसार हमें तबले का महत्व दिखायी देता है। इसलिए ऐसे सर्वश्रेष्ठ तालवाद्य का रियाज़ भी उतना ही श्रेष्ठ होना चाहिए, ऐसा शोधार्थी का विचार है। तबलावादन और रियाज़ यह परस्पर संबंधित हैं। तबलावादन और रियाज़ एक दुसरे के आधारित है और पूरक भी है।

पं. सुधीर माईणकरजी के कथन अनुसार,

''तबले में रियाज़ एक मूलभूत सत्य है। बगैर रियाज़ के प्रभावी तबलावादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रभावी तबलावादन न केवल रियाज़ से, बल्कि विचारपूर्ण रियाज़ से ही मुमकीन है। इसलिए, वादक के लिए हाथों का बल याने मुष्टिबल के साथ–साथ बुध्दिबल होना भी जरूरी है।''[6]

शोधार्थी के मतानुसार, 'गुरू के योग्य मागदर्शन में की गयी तालीम याने 'रियाज', जो शास्त्रीय संगीत का मूलभूत सत्य है'। संगीत कला की कोई भी विधा–गायन, वादन तथा नृत्य, और रियाज़ का बड़ा ही पूरक परस्पर संबंध है।

3.5. तबलावादन में रियाज का महत्व :

तबला वादन में रियाज़ का स्थान एवं महत्व अनन्य साधारण है। सर्वश्रेष्ठ तालवाद्य–तबला का रियाज़ उतना ही श्रेष्ठतम है। संगीत की वादन विधा के अंतर्गत अपनी एक अलग और विशेष पहचान बनाने वाले तबला इस वाद्य ने संगीत जगत में सफलता की चोटियाँ पार की है, ऐसा कहना उचित होगा। तबला वादन में रियाज़ का स्थान अन्यत्तम् है। तबले का रियाज़ ही अपने आप में एक श्रेष्ठता हैं। इसी के आधार पर एकल तबलावादन के जरिए स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत होनेवाला प्रमुख ताल वाद्य, ऐसा सन्मान आज तबलावाद्य ने प्राप्त किया हैं। वादन कला के प्रभावी प्रस्तुतिकरण के लिए रियाज़ का बड़ा ही महत्व है। शोधार्थी के विचार से, तबलावादन और रियाज़, यह एक आंतरिक परस्पर पूरक क्रिया है, जो परिणामकारक तथा प्रभावी सिध्द होती है। संगीत कला में रियाज़ गुरु के मार्गदर्शन से, विभिन्न अंग तथा दृष्टिकोन से होना जरूरी है, इसे ही 'आदर्श रियाज़, अभ्यासपूर्ण रियाज़' कहते है। इस प्रकार, रियाज यह मार्गदर्शन युक्त और अभ्यासपूर्ण होना महत्वपूर्ण है।

संगीत का प्राणतत्व है 'लय' और 'लयतत्व' का प्रमुख तालवाद्य है 'तबला'। इस प्रकार संगीत कला में तबलावादन का स्थान औंर साथ ही उसके रियाज़ का महत्व हमें दिखायी देता हैं।

3.6. वादन प्रस्तुति एवं रियाज़ परस्पर संबंधः

जैसे की पहले कहा गया कि, बगैर रियाज़ के प्रभावी गायन–वादन नही हो सकता, उसी तरह केवल रियाज़ से ही कुशल कलाकार होना भी संभवता नहीं हो पाता। ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि, केवल रियाज़ से नही बल्कि समझ कर किए गए 'अभ्यासपूर्ण रियाज़' से तथा गुरु के मार्गदर्शन में किए गए रियाज़ से ही एक कुशल कलाकार बनना संभव है। इस तरह से किए गए रियाज़ से ही वादन में कुशलता एवं कलात्मकता दिखायी देने लगती है, जिसका परिणाम वादक के वादन प्रस्तुति पर होता हुआ दिखायी देता है। इस प्रकार, वादन प्रस्तुति एवं रियाज़ का बड़ा ही पूरक संबंध है।

तबले का कलात्मक दृष्टिकोन से हुआ सर्वांगीण विकास उसके प्रभावी साथसंगति तथा प्रभावी एकल तबलावादन प्रस्तुति का द्योतक है। तबले का यह विकसनशील आधुनिक रूप है। तबलावादक अपने 'रियाजी हाथ' से ही प्रभावी वादन प्रस्तुति की कल्पना कर सकता है। तबले के विद्वानों का वादन–विचार, उनके अनुभव तथा वर्तमान में हो रही प्रभावी वादन प्रस्तुति से तबलावादको ने ली हुई मेहनत का अंदाजा लगा सकते है। आज की, प्रभावी वादन प्रस्तुति केवल 'रियाज' का ही प्रताप है। तबले की सर्वगुणसंपन्नता के आधार पर वादक का सौंदर्यपूर्ण कलाविष्कार यह उसने किए हुए रियाज़ की अभिव्यक्ति होती है। अपने रियाज़ द्वारा ही तबलावादक अपनी वादन प्रस्तुति कलात्मक तथा सौंदर्यपूर्ण बना पाता हैं। वर्तमान में तबला वाद्य, संगीत कला की परिपूर्णता बन चुका है। अपनी वादन प्रस्तुति सें, तबला ने संगीत विधा की प्रत्येक आवश्यकता पूर्ण रूप से तथा जिम्मेदारी के साथ बाखूबी निभायी है और उसे पुरी की है। उसी तरह, संगीत के विविध प्रकारों में रही हर अपेक्षाओं कि निश्चित रूप से पूर्ति भी की है।

तबले पर बजनेवाले बाज– खुला बाज तथा बंद बाज और उससे निर्माण होनेवाले तबले के असंख्य बोल, बोलसमूह एवं रचना प्रकारों ने तबले के साहित्य को समृध्द कर दीया है। रचना प्रकारों में आए हुए विविध नादाक्षर तथा उनसे हुई नादनिर्मिती संगीतोपयोगी होती है। उसी तरह तबला याने दायाँ और बायाँ की बनावट में जो अलगता है, इसी कारण से दोनों पर किए गए संयुक्त आघात के सुंदर मिलाफ से एक प्रकार के सुखद, आनंददायी नाद का अनुभव मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि, इन सबका पूरक परिणाम वादन प्रस्तुति पर हुआ और यहीं तबले की सर्वगुणरूपेण साकारता बन गयी तथा प्रभावी वादन प्रस्तुति की यह नींव बनी। तबले ने क्रमशः प्रगति पथ पर अपना सर्वांगीण तथा कलात्मक विकास साधते हुए अपने उत्कर्ष की चरमसीमा प्राप्त की है, ऐसा कहना उचित होगा।

शोधार्थी के पूर्वअनुभव पर, वादक ने तबले की इस सर्वगुणसंपन्नता का अनुभव अपने रियाज़ से लेना जरूरी हैं। इससे, वादनप्रस्तुति और रियाज़ का संबंध उसे नजर आयेगा। तबले की इस सर्वगुणसंपन्नता का अच्छा लाभ केवल रियाज़ी तबलावादक ही ले पाता है। सारांश, रियाज़ से वादक अपने वादन प्रस्तुति को सही रूप में न्याय दे पाता है।

3.7. व्यक्तिगत रियाज़ः

व्यक्तिगत रियाज़ याने वादक की अपनी खुद की व्यक्तिगत साधना, जो वह अकेले में करता हैं। गुरू के मार्गदर्शन में सीखकर वादक अब इस पात्र बन जाता है की, वह खुद का रियाज़ स्वयं ही कर सके। व्यक्तिगत रियाज़ के अनेक लाभ होते हैं। अन्य कोई भी बाधा से परे, वादक अपने रियाज़ में मन लगाकर अभ्यास कर पाता है। व्यक्तिगत रियाज़ को उपासना कहना भी योग्य होगा, क्योंकि तबलावादक एक–एक बोलों का रियाज़ वैयक्तिक रूप से करता हैं। व्यक्तिगत रियाज़ का लाभ यह होता है कि, वादक अपने वादन विकास की स्वयं जाँच कर पाता है, ऐसा शोधार्थी का अनुभव भी है।

रियाज़ में एकरूप होने हेतु व्यक्तिगत रियाज़ का बड़ा महत्व हैं। लेकिन, यह सफल होता है, केवल गुरू के योग्य मार्गदर्शन से ही। रियाज़ में एकरूप होकर लीन होना बहुत जरूरी होता है।

3.8. सामूहिक रियाज़ः

सामूहिक रियाज़ याने समूह में किया गया रियाज़। पूर्व गुरूकुल तथा संगीत महाविद्यालयों में साधकों का सामूहिक रियाज़ हमे दिखायी देता है। गुरू के मार्गदर्शन में प्रत्येक विद्यार्थी समूह में रियाज़ करते है। सामूहिक रियाज़ का सबसे अच्छा लाभ यह होता है कि, साधक के मन में कला के प्रति रूचि, उत्साह बढ़ता है। विद्यार्थी एकदुसरे के सहवास मे रियाज करते है और रियाज़ भी अनायास हो जाता है। विद्यार्थी की व्यक्तिगत प्रगति के लिए गुरूजी के संमुख, जो व्यक्तिगत रियाज़ होना या करवाना चाहिए, यें मात्र कम हो जाता है। इससे, विद्यार्थी अपनी प्रगति का अनुभव नहीं ले पाता। उसे और छात्रों पर निर्भर रहना पड़ता है।

शोधार्थी ने पाया है कि, रियाज़ भले ही व्यक्तिगत हो या सामूहिक, लेकिन रियाज़ गुरू के मार्गदर्शन में होना अनिवार्य है।

3.9. रियाज़ की पारंपारिक पध्दतियाँः

रियाज़ की पारंपारिक पध्दतियाँ याने तबले के विद्‌वानों ने तबला जगत को दी हुई अप्रतिम तोहफा है। वर्तमान में, तबले का हुआ विकास और उसका प्रमुख

स्थान यह केवल विद्वानों ने आज तक किए हुए अथक मेहनत का ही फल है। तबले की रियाज़ पध्दति के बारे में विद्वानों ने यथा समय अपने विचार तथा अनुभव रखे है और तबला साधकों को अपने ज्ञान सें लाभान्वित किया हैं। इसलिए, गुरू के मार्गदर्शन में किया गया रियाज़ का बड़ा महत्व है, क्योंकि रियाज़ के बारे में गुरू का मार्गदर्शन उन्होंने किये हुए रियाज़ के अनुभव पर ही होता है, जो सबसे महत्वपूर्ण हैं। रियाज़ की पद्धतियाँ भले ही अलग–अलग हो, लेकिन संगीत कला की साधना गुरू के मार्गदर्शन में ही होना चाहिए, ऐसा शोधार्थी का विचार है।

तबले के विभिन्न घराने तथा उनकी रियाज़ पद्धतियाँ, विद्वानों के विचार, साहित्य संपन्नता, आदि तबले की समृध्दता है। शास्त्रीय संगीत का मूलभूत तत्व होता है 'सौंदर्य' और 'रियाज' ही सौंदर्य का महत्वपूर्ण अंग है। इसी सौंदर्यतत्व के बारे में हमे विस्तृत जानकारी मिलती है, तबले के रियाज़ की विभिन्न पारंपारिक पद्धतियों से। तबले के रियाज़ की यह विभिन्न पद्धतियाँ वर्तमान में प्रत्येक वादक कलाकार का प्रेरणास्त्रोत बन गयी है, इसमें कोई संदेह नहीं।

तबले के रियाज़ की कुछ सुनी हुई परंपरागत पद्धतियाँ;

धा) 'चिल्ला लगाना।

धीं) लकड़ी के भरीव खोड़पर किया गया रियाज़।

एक दिन लकड़ी के खोड़पर तथा दुसरे दिन तबले की खुली पुड़ीपर (तबले–डग्गे पर), ऐसा एक के बाद एक क्रम में अलट पलट कर किया गया रियाज़।

धीं) मोमबत्ती लगाकर किया गया रियाज़।

धा) हाथों में जड़ (कठिन) कड़ी पहनकर किया गया रियाज़।

धीं) आइनें के सामने बैठकर किया गया रियाज़।

ना) तबले के मुखपर दरी/धोती ड़ालकर किया गया रियाज़, आदि।

वर्तमान में, तबला वादक अपनी पसंद तथा पात्रता अनुसार उचित रियाज़ पद्धति का चुनाव कर के रियाज़ करता हुआ दिखायी देता है। लेकिन, इसके साथ गुरूजनों ने किया हुआ रियाज़ देखना, सुनना तथा उसका आचरण करना भी महत्वपूर्ण है। विद्वानों ने रियाज़ पध्दति का यह एक आदर्श हमारे सामने रखा है,

इसी परंपरा को कायम रखना प्रत्येक वादक कलाकार का कर्तव्य है, ऐसा शोधार्थी का मानना है।

रियाज़ की चिल्ला पध्दति :

'तबला वादनः कला और शास्त्र' के रचयिता पं. सुधीर माईणकर 'चिल्ला पध्दति' के बारे में कथन करते है की, ''एकाध मुश्किल निकास के शब्दाक्षर जिस रचना में होते है, उस रचना का दैनंदिन 'घंटे दो घंटे' सातत्य के साथ 40 दिन तक निरंतर बजाने को 'चिल्ला करना' कहते है।''[7]

उधर दूसरी तरफ, ज्येष्ठ तबलावादक और शोधार्थी के गुरू पं. अरविंद मुलगांवकर अपनी पुस्तक 'तबला' में इस प्रकार व्याख्या करते है, ''तबलावादन में कर्णमधुरता और मिठास महत्वपूर्ण है। उसके बाद गतिमानता और लयबंध की क्लिष्टता। आदर्श तबलावादन के लिए यह तीनों बाते अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसे साधने के लिए तबलावादक के बायें तथा दायें हाथ पर प्रमाणबध्द प्रभुत्व होना जरूरी है। ये सब केवल रियाज़ से एकनिष्ठ रहकर ही साध्य हो पाता है। रियाज़ के लिए सुबह का समय आदर्श होता है, जो कि रियाज़ की आदर्श पध्दति है, 'चिल्ला लगाना'। आदर्श तबलावादक बनने के लिए रियाज़ करना महत्वपूर्ण हैं।''[8]

रियाज़ की चिल्ला पध्दति यह फर्रूखाबाद घराने की देन है और इसका निःसंशय संपूर्ण श्रेय खलिफा उस्ताद अमीरहुसेन खाँसाहब को ही जाता हैं। विविध बोलों का, मुरक्कों का (कठिन रचनाओं का) चिल्ला लगाकर रियाज़ करने की पद्धति खाँसाहब ने इतनी दृढ कर दी की आज भी तबले के रियाज़ के बारे में खाँसाहब का नाम हमेशा अग्रणी क्रम में ही लिया जाता है। सचमुच, विद्वानों द्वारा निर्मित रियाज़ की यह 'चिल्ला पध्दति' तबला जगत के लिए एक अनमोल भेट है, ऐसा कहना उचित होगा।

उपर्युक्त कथन को पुष्टि देते हुए ज्येष्ठ तबलावादक पं. सुरेशजी तळवलकर अपनी पुस्तक 'आवर्तन' में लिखते है,

''माझ्या पिढीपर्यत 'चिल्ला' या रियाज प्रकाराचं महत्व पोहोचवण्याचा मान निःसंशयपणे उस्ताद अमीर हुसेन खाँसाहेब यानांच जातो.''[9]

शोधार्थी के गुरू पं. अरविंद मुलगांवकरजी के कथन अनुसार,

''विद्वानों ने कायदा–रेला रचनाप्रकारों के लिए रियाज़ की 'चिल्ला पध्दत' तथा गत, गतटुकड़ो के रियाज हेतु 'मुरक्का' (महत्वपूर्ण पलटा) वादन का महत्व बताया है।''[10]

शोधार्थी का यह मानना है कि, पारंपारिक रियाज़ पध्दतियों में तबले की 'चिल्ला पध्दत' यह एक आदर्श पध्दत है।

3.10. पारंपारिक पद्धतियाँः फायदे एवं गैरफायदेः(रियाज की दृष्टिकोन से)

तबले के रियाज़ की परंपरागत वादन पद्धतियाँ, यह एक प्रकार का विद्वानों का प्रगल्भ तथा अनुभवपूर्ण विचार है, जो तबला जगत को मिला है। क्रियात्मक पक्ष पर इन पंरपरागत रियाज़ पद्धतियों की वादन पद्धति भले ही कठिनतम हो, लेकिन इससे वादक की अच्छी घडंत होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। दुसरी ओर सें विचार किया जाय तो, इन पध्दतियों के जैसे लाभ हमें दिखायी देते है, उसी तरह कुछ अनुचित लाभ भी है, ऐसा शोधार्थी का विचार है। अर्थात, कोई भी चीज़ प्रमाण में करना आवश्यक होता है, उसके प्रमाण का ज्यादापन नुकसानदायक ही सिध्द होगा। उसी तरह, रियाज़ की पध्दति कोई भी हो लेकिन रियाज़ प्रमाणबध्द होना आवश्यक है तथा वह जरूरत से ज्यादा याने अधिक प्रमाण में होना काफी नुकसानदायक हो सकता है। कोई भी चीज़ का जरूरत से ज्यादा इस्तमाल लाभदायक नहीं होता। इसलिए, शोधार्थी के खयाल से तबले का रियाज़ अभ्यासपूर्वक समझकर योग्य प्रमाण में होना आवश्यक हैं।

कुछ पांरपारिक पध्दतियों में; जैसे–

लकड़ी के भरीव खोड़पर ही केवल लगातार रियाज़ करने से, वादक के दायाँ–बायाँ के हाथों में वजन तो आता है, लेकिन ऐसे लगातार किए गए रियाज़ से हाथों में जड़ता आनें की संभावना बढ़ जाती है। लगातार किए गए आघात से नसोंपर तान और ऊँगलियों में भी कुछ तरह के जख्म या निशान आ सकते है, जो भविष्य में घातक सिध्द हो सकते हैं। लकड़ी के खोडपर बजाने से एक प्रकार का निर्जीव आवाज ही निकल पाता है, याने तबले–डग्गे के असली ध्वनि से (नाद से) वादक हमेशा ही वंचित रहता है। शोधार्थी के खयाल से नाद का अभाव, यह वादक के लिए सबसे बड़ा नुकसान सिध्द होता है। लेकिन दुसरी ओंर से देखा जाये तो,

एक दिन लकड़ी के खोड पर और दुसरे दिन खुले तबले पर अलट–पलट के किये गये रियाज से वादक को जरूर लाभ मिलता है। इस तरह के रियाज से वादक अपने वादन पर हुआ परिणाम भी अनुभव कर पाता है। इसलिए शोधार्थी के विचार से लकड़ी के खोड़पर लगातार रियाज न करते हुए अलट–पलट कर रियाज़ करना वादक के लिए लाभदायक सिध्द होगा।

रियाज़ के उपर्युक्त पद्धति पर प्रकाश ड़ालते हुए, शोधार्थी के गुरूवर्य पं. अरविंद मुलगांवकरजी कहते है,

'उस्ताद अमीरहुसेन खाँसाहेबांनी सांगितलेला एक किस्सा येथे देत आहे. उस्ताद हाजी विलायत अली खाँसाहेबांच्या संगीत शाळेमध्ये त्यांचे अनेक ज्येष्ठ विद्यार्थी रियाझास एकत्र येत, त्यावेळी प्रत्येकाच्या समोर भरीव लाकडाचे दोन खोड ठेवले जात व त्याच्यावर सर्वांचा रियाज़ चालत असे, कारण अशा रियाजानंतर प्रत्यक्ष तबल्यावर (खुल्या) वाजवताना हाताचे वजन, दायाँ–बायाँचा आघात अशा अनेक गोष्टींचे वादन सहज होत असे, अशी त्यातून प्रत्येकाला अनुभूती येत होती.'[11]

रियाज़ कि दूसरी पध्दति में हाथों में जड़ कड़ी पहनकर रियाज़ करने की प्रथा विशेष तौर पर बनारस घराने के तबलावादकों में दिखायी देती है। बनारस के तबला वादक रियाज़ के बारे में बड़े ही मेहनती थे, इसमें कोई संदेह नहीं। यह घराना तबले के 'रियाज़' के लिए ही लोकप्रिय है। वादक को जड़ कड़ी पहनकर रियाज़ करने से हाथों में वजन आने मे काफी सुलभता महसूस होती है, इसके साथ, हाथ में हलकापन भी अनुभव होता हैं। इसका परिणाम यह होता है कि, वादक के प्रत्यक्ष वादन प्रस्तुति में एक प्रकार की सहजता आती है और वह अपनी वादन प्रस्तुति अंततक अथक रूप से कर पाता है। यह इस पध्दति का लाभ हैं। दुसरी ओर से विचार किया जाए तो, हाथ में कड़ी पहनने से हाथ की नसों पर अतिरिक्त ताण आने की भी सँभावना बढ़ती है, जिससे नसों को शारीरिक नुकसान भी हो सकता है। नसों पर दिए गए अतिरिक्त तणाव से वादक के हाथ की नसे बध्दरूप होती है याने खुली नहीं हो पाती। इसका परिणाम, ऊपर की मंजिल के वादन पर हो सकता है। नसों पर आए तणाव से, वादक गतिमानता से वादन करने में असफलता महसूस करता है। इस प्रकार, देखा जाए तो इस रियाज पध्दति का अधिक उपयोग, नुकसानदायक भी साबित हो सकता है।

रियाज़ की और एक आदर्श तथा काफी प्रचलित पध्दति है, 'चिल्ला लगाना'। लगातार चालीस दिन तक नियोजित समय में विविध रचना प्रकारों का चिल्ला लगाकर रियाज़ करना, यह इस पध्दति की विशेषता है। कायदे–रेलो के लिए चिल्ला लगाकर रियाज़ करना तथा गत, गतटुकडे आदि के लिए मुरक्का वादन का रियाज़, यह इस पद्धति की और एक विशेषता है। रियाज़ की 'चिल्ला पध्दत', यह फर्रूखाबाद घराने की देन है। चिल्ला पध्दति के प्रचार का श्रेय खलिफा उस्ताद अमीरहुसेन खाँ साहब को जाता है। रियाज़ की विभिन्न पद्धतियों की तुलना में रियाज़ की 'चिल्ला पध्दत' बहुत ही लाभदायक है, ऐसा शोधार्थी का विचार है। भले ही, वर्तमान में यह पद्धति अधिक तर दिखायी नहीं देती हो, लेकिन वादक ने इस पद्धति का जरूर अनुभव लेना चाहिए। लगातार चालीस दिन रियाज़ करने पर अब मर्यादा पड़ चुकी है, इसलिए इस पध्दति का युवा तबलावादकों के प्रति स्वागत होता हुआ नहीं दिखायी देता हैं।

रियाज़ की 'चिल्ला पध्दत' सचमुच 'आदर्श पध्दति' है। तबला वादक ने अपने रियाज़ का नियोजित समय पक्का कर के, उसमें विविध रचना प्रकारों का तथा गत, गतटुकडो का रियाज़ करना महत्वपूर्ण है और जब वह वादक इस प्रकार, अपने नियोजित रियाज़ में और समय में, निरंतरता रखकर कायम रहेगा, तो शोधार्थी के खयाल से वही उसका 'चिल्ला' होगा। सारांश, वादक ने अपनी रियाज़ पद्धति से ईमानदार रहकर रियाज़ करना महत्वपूर्ण है।

शोधार्थी के मतानुसार, तबले के रियाज़ की 'चिल्ला पध्दत' यह परंपरागत रियाज़ पद्धति की प्रातिनिधिक आदर्श पद्धति है।

तबले – डग्गे पर धोती या दरी ड़ालकर रियाज करने की पध्दति भी काफी प्रचलित है। दरी के स्तर बढ़ाते हुए वादक रियाज़ करता है तथा हाथों में ताकद का प्रयोग करके रियाज़ करता है। ऐसे रियाज़ के बाद, जब वह खुले तबलेपर वादन करता है, तब अपने नाद में उसे अधिक खुलापन, महसूस होता है, ऐसा शोधार्थी का पूर्व अनुभव भी है।

प्रतिभावान युवा तबलावादक तथा पं. योगेशजी समसी के शिष्योत्तम श्री. स्वप्निलजी भिसे अपने साक्षात्कार में कहते है, ''रियाज़ खुले तबलेपर ही करना चाहिए, जिससे वादक को दाएँ–बाएँ का नैसर्गिक ध्वनि का अनुभव मिल सके। ऐसे

रियाज़ से ही वादक के ऊँगलियों को आँखे याने नजर प्राप्त होती है तथा कान भी ध्वनि तथा नाद का अच्छा अनुभव प्राप्त कर पाते है।"[12]

शोधार्थी के मतानुसार तथा पूर्व अनुभव अनुसार, वादक को तबलेपर दरी ड़ालकर रियाज़ करने की पद्धति लाभदायक है, लेकिन यह कुछ हद तक ही सीमित है। वादक ने अपने रियाज़ का आधा समय दरी ड़ालकर तथा उर्वरित समय प्रत्यक्ष खुले तबलेपर रियाज़ करना आवश्यक है, ऐसा अनुभव है।

3.11. रियाज़ एक प्रयोगः

रियाज़ का सीधा संबंध प्रत्यक्ष वादन से याने वादन प्रस्तुति से होता है, इसलिए रियाज़ में प्रयोग की अपने आप में एक अलग पहचान है। प्रयोग में रियाज़ का अस्तित्व भी रहता हैं। विद्वानों का तबलावादन सुनने से हमे यह ज्ञात होता है कि, वे अपने प्रत्यक्ष वादन प्रस्तुति को भी अपना रियाज़ ही समझते थे। वे अपने वादन में इतने घुलमिल जाते थे कि, उनको यह एहसास भी नहीं रहता था कि, वे रियाज़ कर रहे हैं या प्रत्यक्ष वादन? विद्वान–गुरूजनों की यह रियाज़ के प्रति एकरूपता ही थी, नही तो और क्या?

शोधार्थी के गुरू ज्येष्ठ तबलावादक पं. अरविंद मुलगांवकर जी अपने एक साक्षात्कार में कहते है की, "उस्ताद थिरकवाँ, उस्ताद अमीरहुसेन, उस्ताद हबीबुदीनखाँ, उस्ताद चुडियावाले इमाम बक्श, आदि विद्वान तबलावादक अपने स्वतंत्र तबलावादन में मुरक्कों की झलक दिखाकर एक अलग ही वातावरण बनाते थे।"[13]

मुरक्कों का वादन रियाज़ हेतु होता था, उनकी निर्मिति भी रियाज़ के ही लिए हुई हैं। "मुरक्का' यह वादनप्रकार की महत्ता उसकी रचना में ही निहित होती है। लेकिन, उपर्युक्त कथन अनुसार, विद्वानजन प्रत्यक्ष वादन प्रस्तुति में भी इनका वादन कर के कलाविष्कार और भी सौंदर्यपूर्ण बनाते थे।

उधर, प्रो. डॉ. गौरांग भावसारजी अपने साक्षात्कार मे कहते है, "रियाज़ यह ललित है, जो नित्यनवीन होता है, अविरत चलता है। विद्यार्थीयों का तबला सीखना तथा वादन प्रस्तुति करना यह दोनों भी रियाज ही है। रियाज़ यह एक विशाल, व्यापक तथा सूक्ष्म संज्ञा है। विद्यार्थीयों ने हमेशा, मैं एक रियाज़ी साधक हूँ और

रियाज़ ही मेरी मनसे पूजा है, ऐसा भाव रखना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि, रियाज़ करना अपने आप में एक नित्य नवीन प्रयोग है, जिसका अनुभव तबलावादक ने निरंतर रियाज़ से लेना जरूरी है।''[14]

विद्वानों के उपर्युक्त विधानोंपर शोधार्थी का प्रतिनिवेदन है कि, तबला यह एक प्रयोगशील कला है, ठीक उसी तरह वादक का रियाज़ भी प्रयोगशील होना चाहिए। नित्य और नवीनता से किए गए रियाज़ से वादक हररोज कुछ नया जरूर सीखता है, ऐसा अनुभव है। और एक महत्वपूर्ण बात, रियाज रूपी साधना से ही वादक की आध्यात्मिक भावना बढ़ती है तथा उसकी यही प्रगति भी होती है।

3.12. रियाज़ एक आवश्यकताः

तबलावादन कला में रियाज़ का महत्व अन्यतम् है। रियाज़ की पूर्ण रूप से आवश्यकता ही उसका महत्व है। तबला वादन में रियाज़ अनिवार्य बन चुका हैं। तबलावादन में रियाज़ की स्वीकृति अब सर्वमान्य हो गयी है। बगैर रियाज़ के वादन प्रस्तुति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। गुरूजनों से पायी विद्या को निभाने हेतु, तथा संतुलित करने हेतु रियाज़ की आवश्यकता है। संगीत कला गुरूमुखद्वारा परंपरा से ही मिलती है, जो इसका महत्व है। इसलिए ललित कलाओ में संगीत कला को श्रेष्ठ माना गया है। शोधार्थी की यह भावना है कि, प्रस्तुत परंपरा को बरकरार रखने के लिए, रियाज़ की आवश्यकता है, जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। विद्यार्थी सीखते है, विचार करते है और यहीं सोच–विचार, आगे विवेक का रूप धारण करता है और फिर शुरू होती है– शिष्य परंपरा। इसी परंपरा में शिष्य, अपने गुरूद्वारा प्राप्त विद्या का, कला का रियाज़ करके उस परंपरा को आगे प्रवाहित करता हुआ बढ़ाता है। सही मायने में, यही वादन प्रस्तार तथा वादन विकास है, ऐसा शोधार्थी का मत है। गुरूमुखी वादन परंपरा का विकास, यह शिष्यद्वारा ली गयी मेहनत का ही फल होता है और इसे ही रियाज़ कहते हैं।

इस तरह, तबलावादन में रियाज़ की आवश्यकता हमें दिखायी देती है। तबलावादन में रियाज़, यह एक आवश्यक तथा मूलभूत तत्व है, जो सत्य है।

3.13. रियाज़ एक सफलताः

पूर्वपार से चलता आ रहा तथा विकसित हो रहा तबलावादन का वर्तमान स्वरूप यह केवल, उन विद्वानों–गुणीजनों के रियाज़ का ही फल है। विद्वानों ने जीवनभर संगीत की साधना कर के रियाज़ को सफलता की चोटीपर पहुँचा दिया है। सचमुच, रियाज़ कलाकारों का एक प्रकार का सर्वस्वी त्याग है, ऐसा कहना उचित होगा।

तबले के विभिन्न घराने के गुणीजन एवं गुरूजन तथा विद्वान–कलाकारों ने रियाज़ का एक आदर्श वर्तमान पीढ़ी के सामने रखा है, यहीं रियाज़ की सफलता है। इन विद्वान–कलाकारो में, चाहे वो दिल्ली के उस्ताद नत्थु खाँ, उस्ताद इनाम अली खाँ, अजराड़ा के उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ, लखनौ के उस्ताद वाजीद हुसेन खाँ, उस्ताद जहाँगीर खाँ, फर्रूखाबाद के उस्ताद थिरकवाँ, उस्ताद अमीर हुसेन खाँ, बनारस के पं. अनोखेलाल, पं. सामता प्रसाद, पं. किशन महाराज तथा पंजाब के उस्ताद अल्लारखाँ साहेब से लेकर, वर्तमान में उस्ताद झाकिर हुसेन, पं. योगेश समसी, पं. आनिन्दो चटर्जी, पं. कुमार बोस, पं. सपन चौधरी, ऐसे कई विद्वानों ने 'तबला और तबले का रियाज़' अजरामर कर दिया है। इन मूर्धन्य कलाकारों ने की हुई तबले की तपश्चर्या तबलावादको के चिरंतन स्मरण में रहेगी तथा हमेशा एक प्रेरणास्त्रोत बनकर रहेगी, इसमें कोई संदेह नही।

शोधार्थी ने यह पाया है कि, यहीं रियाज़ की वास्तविक सफलता है। यशस्वी कलाकार बनने के लिए वादक को जिद्दी, उत्साही वृतिवाला, प्रयत्नशील तथा मेहनती होना जरूरी है और उसके के लिए कठीन साधना की आवश्यकता है।

3.14. रियाज़ एवं कलाकारः

तबले का रियाज़ एवं तबला कलाकार यह एक घनिष्ठ नाता है, जिसका गहरा संबंध है। रियाज से ही वादक, कलाकार बनता है यह निश्चित है।

ज्येष्ठ तबलागुरू पं. सुधीर माईणकरजी अपने साक्षात्कार में कलाकार की व्याख्या करते हुए कथन करते है कि,

''योग्य गुरू से लीया गया मार्गदर्शन यानी तालीम और उस पर शिष्यद्वारा ली गयी प्रामाणिक मेहनत यानी रियाज़, इससे ही एक कलाकार बनना पूर्णतः संभव होता है।''[15]

शोधार्थी, उपुर्यक्त अनुभवी कथन पर पूर्णतः स्वीकृति दर्शाते हुए कथन करता है कि, योग्य गुरू तथा रियाज़ ही कलाकार का द्योतक है, रियाज़ ही कलाकार की सही सफलता भी है।

कुशल कलाकार बनना, केवल रियाज़ से ही संभव है। वादक ने प्रामाणिकता से रियाज़ किया हो तो उसकी कलाकार बनने की मंजिल दूर नहीं होती, बल्कि वो और भी पास आ जाती है और एक दिन वादक अपने रियाज़ के फलस्वरूप ही गुणवान कलाकार जरूर बनता है। कलाकार की कला प्रस्तुति में उसका रियाज़ ही झलकता रहता है। कला की प्रस्तुति यह, कलाकार के रियाज़ की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए रियाज़ और कलाकार का संबंध बड़ा ही गहरा तथा परस्पर संबंधित है। इसका अनुभव, हमें कलाकार के कलाविष्कार की सौंदर्यपूर्ण प्रस्तुति में मिलता है। कला की सौंदर्यपूर्ण प्रस्तुति को देखते–सुनते है तो, पहला विचार यहीं आता है– क्या रियाज किया होगा इस कलाकार ने? .... कलाकार अपने आपको रियाज में ढाँल देता है, उससे एकरूप और एकनिष्ठ हो जाता है और फिर, कलाकार और रियाज़ यह द्वैता न रहकर एकसा हो जाता है। इसी एकरूपता से ही एखाद कलाकार शिखर की उँचाई पर पहुँचता है। विद्वानो ने इसे, कलाकार के साधन की ध्यानावस्था कहा है। यह सब, रियाज का ही गौरव है। इस तरह, कलाकार का रियाज़ उसकी वादन प्रस्तुति बन जाता है और वादन प्रस्तुति ही उसका रियाज़ बन जाती है।

पं. सुधीर माईणकरजी के कथन अनुसार,

''कलाकार की सफलता में उसकी तपस्या का बड़ा हिस्सा होता है। तपस्या के बिना केवल प्रतिभा के बलपर कलाकार बड़ा हो ही नहीं सकता। कला–क्षेत्र में रियाज़ के लिए कोई पर्याय नहीं है; क्योंकि संगीत कला एक क्रियात्मक कला (Performing Art) है। केवल नैसर्गिक गुणवत्ता मनुष्य को बड़ा नहीं बनाती। एक बार ऐसी गुणवत्ता न भी हो, किन्तु प्रदीर्घ कलात्मक सातत्यपूर्ण मेहनत एवं मार्गदर्शन हो, तो भी कलाकार बडा हो सकता है।''[16]

उपर्युक्त कथन पर शोधार्थी का मानना है कि, 'कलाकार बनने के लिए, रियाज़रूपी साधना के असंख्य आवर्तन करने पड़ते है, लेकिन प्रत्यक्ष नाद ब्रम्ह के साक्षात्कार के लिए कलाकार को तपस्वी साधक बनना जरूरी है। यहीं सातत्यपूर्ण साधना आगे, तपस्या का रूप धारण करती है। इसलिए, रियाज़ का अनन्यसाधारण महत्व है।'

इस प्रकार, हमें रियाज़ एवं कलाकार की घनिष्ठता तथा उनका परस्परसंबंध दिखायी देता है। कलाकार की कला प्रयोगशीलता, नवनिर्मिती–क्षमता, प्रतिभा एवं चिंतनशीलता के लिए रियाज़ महत्वपूर्ण है।

पादटिप्पणियाँः

1. माईणकर, सुधीर, ''तबला वादन कला और शास्त्र'', हिंदी, गांधर्व महाविद्यालय, प्रकाशन, प्रथम संस्करण, मिरज, 2000, पृ. 4.
2. वही, पृ. 4.
3. माईणकर, सुधीर, ''तबला वादन में निहित सौंदर्य'', हिंदी, सरस्वती पब्लिकेशनस्, प्रथम संस्करण, मुंबई, 2008, पृ. 63.
4. माईणकर, सुधीर, ''तबला वादन कला और शास्त्र'', हिंदी, गांधर्व महाविद्यालय, प्रकाशन, प्रथम संस्करण, मिरज, 2000, पृ. 8.
5. मुलगांवकर, अरविंद, ''तबला'', मराठी पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, तृतीय संस्करण, 2016, पृ. 302.
6. साक्षात्कारः माईणकर, सुधीर, ज्येष्ठ तबला गुरू, दि. 24 नवंबर, 2018.
7. माईणकर, सुधीर, ''तबला वादन कला और शास्त्र'', हिंदी, गांधर्व महाविद्यालय, प्रकाशन, प्रथम संस्करण, मिरज, 2000, पृ. 66.
8. मुलगांवकर, अरविंद, ''तबला'', मराठी पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, तृतीय संस्करण, 2016, पृ. 303.
9. तळवलकर, सुरेश, ''आवर्तन'', मराठी, राजहंस प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण, 2008, पृ. 53.
10. मुलगांवकर, अरविंद, ''तबला'', मराठी पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, तृतीय संस्करण, 2016, पृ. 308.
11. साक्षात्कार : मुळगांवकर, अरविंद, ज्येष्ठ तबलागुरू, दि. 24 जनवरी, 2018.
12. साक्षात्कारः भिसे, स्वप्निल, युवा तबलावादक, दि. 8 अक्टूबर, 2019.
13. साक्षात्कार : मुळगांवकर, अरविंद, ज्येष्ठ तबलागुरू, दि. 24 जनवरी, 2018.
14. साक्षात्कार : भावसार, गौरांग, तबला प्रोफेसर, दि. 30 सितंबर, 2019.
15. साक्षात्कारः माईणकर, सुधीर, ज्येष्ठ तबलागुरू, दि. 24 नवंबर, 2018.
16. माईणकर, सुधीर, ''तबला वादन कला और शास्त्र'', हिंदी, गांधर्व महाविद्यालय, प्रकाशन, प्रथम संस्करण, मिरज, 2000, पृ. 283.